संदर्भ ग्रन्थ

1. एरिक स्टोक्स, दी पिजेन्ट एंड दी राज, कैम्ब्रीज, 1978, पृ0 52–55
2. उपर्युक्त
3. ताराचन्द, हिस्ट्री आफ फ्रीडम मूवमेन्ट इन इंडिया, वो0 II, नई दिल्ली, 2005 पृ0 3–5
4. उपर्युक्त
5. उपर्युक्त
6. सुमित सरकार, आधुनिक भारत, दिल्ली, 2004, पृ0 62–63
7. उपर्युक्त
8. रणजीत गुहा, एलीमेन्टरी आसपेक्ट्स आफ पीजेन्ट इनसरजेन्सी इन कोलोनियल इंडिया, दिल्ली, 1983, पृ0 167–69
9. के0एस0सिंह, दस्ट स्टार्म एंड हैंगिग मिस्ट, कलकत्ता, 1966, पृ0 104
10. सुमित सरकार, पूर्वोक्त, पृ0 64–65
11. शेखर वंधोपाध्याय, प्लासी से विभाजन तक, नई दिल्ली, 2010, पृ0 173–74
12. उपर्युक्त
13. उपर्युक्त, पृ0 75
14. एन0 के0 सिन्हा, हिस्ट्री आफ बंगाल, 1757–1905, कलकत्ता, 1967, पृ0 102–5
15. उपर्युक्त
16. उपर्युक्त

गुप्तकाल में सामन्तवाद का विकास

डॉ. शीला कुमारी*

गुप्तकाल को भारतीय इतिहास का स्वर्णयुग कहा जाता है। मौर्यों के पतन के पश्चात् नष्ट हुई भारत की राजनीतिक एकता को गुप्त शासकों ने पुनः अर्जित किया तथा लगभग सम्पूर्ण भारत को एक राजनीतिक छत्र के अधीन कर शक्तिशाली विदेशी आक्रान्ताओं का सफलतापूर्वक सामना कर भारत की स्वतंत्रता को अक्षुण्ण रखा। इस युग में भारत ने राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, साहित्यिक एवं कला के क्षेत्र में अपार उन्नति की। विदेशी लेखकों द्वारा भी प्रशंसित सुखी एवं समृद्ध समाज की स्थापना, वृहतर भारत की अवधारणा की क्रियान्विति, गुणग्राहकर्ता, धर्म–सहिष्णुता, इस युग की प्रमुख देन थी। सांस्कृतिक उन्नति होने के कारण इस युग के विषय में जानने के लिए विभिन्न प्रकार के सामग्री उपलब्ध हैं, जैसे, साहित्यिक, अभिलेखीय, मुद्राएँ, मुहरें, स्मारक इत्यादि।[1]

गुप्तकालीन शासन व्यवस्था से विस्तृत जानकारी मिलती है। इन्हीं माध्यमों से ज्ञात होता है कि गुप्त शासकों ने अपने विस्तृत साम्राज्य में अत्यंत सुदृढ़ शासन की स्थापना करके अपनी विजयों को स्थायी बना दिया। गुप्त राजाओं ने अपने पूर्वगामी शासकों के शासन प्रबंध को अपनाते हुए उसमें कुछ आवश्यक परिवर्तन कर उसे समायानुकूल बनाया। इस प्रकार यद्यपि गुप्त प्रशासन गुप्त राजाओं की मौलिक कृति नहीं थी, किंतु उसमें समयानुसार किए गए परिवर्तनों एवं इसे कुशलतापूर्वक कार्यान्वित करने के कारण, बिना निरंकुश पुलिस व्यवस्था एवं कठोर दंड व्यवस्था के गुप्त शासक प्रसिद्ध 'गुप्तकालीन शांति' की स्थापना करने में सफल हुए। इस कुशल प्रशासनिक व्यवस्था के परिणामस्वरूप ही जनता आर्थिक रूप से भी समृद्ध हो सकी। गुप्तकालीन अभिलेखों में भी इसका विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। जूनागढ़ अभिलेख में उल्लेख किया गया है कि उस समय कोई दुखी–दरिद्र व्यसनी, कठोर दंड से पीड़ित अथवा राजकीय नियंत्रणों से मुक्त था। चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल में भारत आये चीनी यात्री फाह्यान के वृतांत से भी तत्कालीन प्रशासनिक व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है। 'फाह्यान' ने एक जगह लिखा भी है कि गुप्त काल बहुत हद तक अपराधमुक्त था।[2]

प्रारंभिक गुप्त शासकों के विजयों के परिणामस्वरूप गुप्त साम्राज्य पूर्वी समुद्र से पश्चिमी समुद्र तक तथा हिमालय से नर्मदा नदी तक विस्तृत हो गया था। गुप्त शासकों ने मौर्यों के समान समस्त विजित प्रदेशों को अपने साम्राज्य में विलीन

***एम.ए., पीएच.डी., इतिहास, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मजुफरपुर**

नहीं किया तथा अपना राज्य आर्यावर्त तक ही सीमित रखा। गुप्त साम्राज्य मौर्यों के साम्राज्य के समान केन्द्रित एवं विशाल नहीं था। अनेक सामन्त गणराज्य, अधीनस्थ राजा आदि थे, जो गुप्तों के आधिपत्य को स्वीकार करते थे। गुप्त शासकों के अनेक सामन्तों का उल्लेख मिलता है। ये नृप महाराज, उपारिक महाराज आदि उपाधि धारण करते थे एवं अपने राज्य में स्वतंत्रतापूर्वक शासन करते थे। सामन्तों की अलग–अलग सेना होती थी। सामन्त समय–समय पर राजस्व एवं उपहार देते थे, युद्ध के समय सैनिक सहायता देते थे तथा राजकीय उत्सवों पर उपस्थिति होकर सम्राट के वैभव को प्रदर्शित करते थे। गुप्त साम्राज्य की अधीनता अनेक गणराज्यों ने भी स्वीकार की थी। दक्षिण भारत के अभियान के समय समुद्रगुप्त ने अनेक शासकों को परास्त किया था, किंतु उनके राज्यों को नहीं छीना था। ये शासक भी गुप्तों का आधिपत्य स्वीकार करते थे। इसके अलावे अनेक विदेशी एवं सीमावर्ती शासक भी गुप्तों का आधिपत्य स्वीकार करते थे।

गुप्तों का प्रशासन तंत्र उतना लम्बा चौड़ा नहीं था जितना मौर्यों का। गुप्त साम्राज्य के सबसे बड़े अधिकारी कुमार मात्य होते थे। राजा उन्हें अपने प्रांत में ही नियुक्त करता था। शायद वे नगद वेतन पाते थे। चूँकि गुप्त वंश वाले शायद वैश्य जाति से थे, इसलिए प्रशासनिक पदों पर नियुक्ति केवल उच्च वर्णों तक सीमित नहीं थी। परन्तु अनेक पदों का प्रभार एक ही व्यक्ति के हाथ में सौंपा जाने लगा, और पद वंशगत हो गए। सहज ही इससे राजकीय नियंत्रण शिथिल हो गया।

गुप्तवंशीय राजाओं ने प्रशासन की द्विस्तरीय व्यवस्था की। पहला प्रांतीय और दूसरा, स्थानीय शासन की पद्धति चलाई। राज्य के कई मुक्तियों अर्थात् प्रांतों में विभाजित था और हर मुक्ति एक–एक उपारिक के प्रभार में रहती थी। मुक्तियाँ कई विषयों अर्थात् जिलों में विभाजित थी। हर विषय का प्रभारी विषयपति होता था। पूर्वी भारत में विषय, वीथियों में बँटे थे और बीथियाँ ग्रामों में विभाजित थी।[3]

गुप्त काल में गाँव के मुखिया का पद अधिक महत्वपूर्ण हो गया था। वह ग्राम श्रेष्ठों की सहायता से गाँव का काम–काज देखता था। ग्रामों और छोटे–छोटे शहरों के प्रशासन से प्रमुख स्थानीय लोग जुड़े हुए थे। उनकी अनुमति के बिना जमीन की खरीद–बिक्री नहीं हो सकती थी।[4]

नगर के प्रशासन में व्यावसायियों के संगठनों की अच्छी साझेदारी रहती थी। वैशाली से प्राप्त मुहरों से स्पष्ट है कि शिल्पी, वजिक और लिपिक एक ही संस्था में काम करते थे और इस हैसियत से वे स्पष्टतः नगर के कार्यों का संचालन करते थे। उत्तरी बंगाल यानि आज का बंग्लादेश, के कोटि वर्ष विषय की प्रशासनिक परिषद् में मुख्य वजिक, मुख्य व्यापारी और मुख्य शिल्पी शामिल थे। भूमि के हस्तांतरण में उनकी सम्मति आवश्यक समझी जाती थी।

शिल्पियों और वजिकों के अपने अलग–अलग संगठन (श्रेणियाँ) थे। भीटा और वैशाली के शिल्पियों और वाणिकों की अलग–अलग श्रेणियाँ हमें ज्ञात है। मालवा के मंदसौर में देशम बुनकरों की अपनी खास श्रेणियाँ थीं। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में बुलन्द शहर जिले एवं इंदौर में तेलियों की अपनी श्रेणियाँ थीं। ऐसा प्रतीत होता है कि इन श्रेणियों को खासकर वणिकों की श्रेणियों को, कई खास छुटों की सुविधा दी गई थी। हर हालत में ये श्रेणियाँ अपने सदस्यों के मामले देखती थीं और श्रेणी के नियम कानून और परम्परा को उलंघन, करने वालों को सजा दे सकती थीं। इससे एक बात स्पष्ट होता है कि गुप्तकालीन, प्रशासनिक व्यवस्था विकेन्द्रित थी तथा नीचले स्तर तक प्रशासनिक स्वतंत्रता थी।[5]

ऊपर वर्णित प्रशासन पद्धति केवल उत्तरी बंगाल बिहार और उत्तर प्रदेश में तथा मध्य प्रदेश के कुछ संलग्न क्षेत्रों में ही लागू थी, जहाँ गुप्त राजा अपने अधिकारियों की सहायता से सीधा शासन करते थे। साम्राज्य के ज्यादातर भाग सामन्तों या मंडलेश्वरों के हाथ में थे, जिनमें से अनेकों को समुद्रगुप्त ने अपने अधीन कर लिया था। साम्राज्य के सीमावर्ती सामन्तों को तीन जिम्मेवारियाँ पूरी करनी होती थी। वे सम्राट के दरबार में स्वयं उपस्थित होकर सम्मान निवेदन करते, नजराना चढ़ाते और विवाहार्थ अपनी पुत्री समर्पित करते थे। लगता है कि इसके बदले उन्हें अपने क्षेत्र पर अधिकार का शासन पत्र मिलता था। गरूड़ छाप वाली राजकीय मुहर जिन शासन पत्रों पर हैं, वे सामन्तों के जारी किए गए प्रतीत होते हैं। इस प्रकार मध्य प्रदेश में और अन्यत्र गुप्तों के कई सामंत राज करते थे। अधीनता की स्थिति में इन राजाओं को सामन्त बना दिया था।[6]

गुप्तकाल में उभरा दूसरा महत्वपूर्ण सामन्तिक लक्षण है पुरोहितों और प्रशासकों को क्षेत्र–विशेष में कर ग्रहण और शासन करने की रियायत का दिया जाना, जिसे ग्रामदान कहते हैं। इस प्रथा का आरंभ दक्कन में सातवाहनों ने किया और गुप्तकाल में खासकर मध्य प्रदेश में, तो यह सामान्य परिपाटी बन गई। धर्माचार्यों को करमुक्त भूमि दान में दी जाती थी और उन्हें वैसे सभी कर उगाहने का अधिकार भी दे दिया जाता था, जो कर अन्यथा राजकोष में जाते थे। जो ग्राम दान में दे दिए जाते थे उनमें राजा के अधिकारियों और अमलों को भी प्रवेश करने का हक नहीं रहता था। हिताधिकारी वहाँ के अपराधकर्मियों को सजा भी दे सकता था।[7]

गुप्तवंश के शासन काल में अधिकारियों को वेतन का भुगतान जमीन देकर किया जाता था या किसी और तरीके से, यह स्पष्ट नहीं है। स्वर्णमुद्रा की अधिक उपलब्धता से लक्षित होता है कि ऊँचे अधिकारियों को नगद वेतन देने की परिपाटी चलती रही, किंतु उनमें से कुछ–न–कुछ अधिकारी अपना पावना भूमि के जरिए भी प्राप्त करते थे।

चूँकि साम्राज्य के प्रशासन संबंधी बहुत सारे काम सामन्तों और हितकारियों के हाथों ही सम्पन्न हो जाते थे, इसलिए मौर्यों की भाँति गुप्तों को अधिक अधिकारी वर्ग रखने की आवश्यकता नहीं रही। यह भी बहुत बड़ा करण बना जो गुप्तकाल में सामंतवाद को बढ़ावा दिया। बहुत अधिक अधिकारी रखना इसलिए भी अनावश्यक हो गया होगा क्योंकि राज्य की भाँति गुप्त राज्य बड़े पैमाने पर आर्थिक कार्यकलाप में संलग्न नहीं था। ग्राम और नगर के प्रशासन में शिल्पियों श्रमिकों, श्रेष्ठियों आदि के भाग लेने से बहुत ज्यादा अधिकारियों की आवश्यकता न रह गया था। गुप्तों का मौर्यों की भाँति न लम्बा–चौड़ा प्रशासन तंत्र था, और न उन्हें उसकी आवश्यकता ही थी। इसी कारण से कई दृष्टि से गुप्तों की राजनीतिक प्रणाली में सामंती रंग दिखाई देता है।[8]

उपरोक्त वर्णन से गुप्तकालीन आर्थिक जीवन की कुछ झलक, फाह्यिान के विस्तृत वर्णन से मिलता है जो साम्राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में भ्रमण किया था। अन्य बातों के अलावा वह बताता है कि मगध नगरों और सम्पन्न लोगों से भरा–पूरा था, और धनी लोग बौद्ध धर्म का सम्पोशण करते थे और उसके लिए दान देते थे।

प्राचीन भारत के गुप्त राजाओं ने सबसे अधिक स्वर्ण मुद्राएँ जारी की, जो उनके अभिलेखों में दीनार कही गई है। नियंत्रित आकार और भारवाली ये स्वर्ण मुद्राएँ अनेक प्रकारों और उप प्रकारों में पायी जाती हैं। इन पर गुप्त राजाओं के स्पष्ट चित्र हैं, और इनसे उनकी युद्धप्रियता और कलाप्रियता का पता चलता है। यद्यपि स्वर्णांश में ये मुद्राएँ उतनी शुद्ध नहीं है, जितनी कुषाण मुद्राएँ, तथापि ये न केवल सेना और प्रशासन के अधिकारियों को वेतन चुकाने में, अपितु भूमि की खरीद–बिक्री संबंधी आवश्यकता की पुष्टि में सहायक हुई। गुजरात विजय के बाद, गुप्त राजाओं ने बड़ी संख्या में चाँदी के सिक्के भी जारी किये जो केवल स्थानीय लेन–देन के लिए उपयोग होता था, क्योंकि पश्चिमी क्षत्रों के यहाँ चाँदी के सिक्कों का महत्वपूर्ण स्थान था। कुशाणों की तुलना में गुप्तों के तांबे के सिक्के बहुत कम मिलते हैं। इससे यह लगता है कि जन–सामान्य में मुद्रा का प्रयोग जितना कुशाणों के समय होता था, उतना अब नहीं।[9]

पूर्व समय की तुलना में दूर व्यापार में गिरावट दिखाई देता है। 550 ई. तक भारत पूर्वी रोमन साम्राज्य के साथ–साथ, कुछ–कुछ व्यापार करता रहा जहाँ रेशम भेजता था। 550 ई. के आसपास पूर्वी रोमन साम्राज्य के लोगों ने चीनियों को रेशम पैदा करने की कला सीख ली। इससे भारत के निर्यात व्यापार पर बुरा असर पड़ा। छठी सदी का मध्य आते–आते भारतीय रेशम की माँग विदेश में कमजारे पड़ गई थी। पाँचवी सदी के मध्य में रेशम बुनकरों की एक श्रेणी पश्चिम

भारत स्थित अपने मूल निवास थान 'लाट' देश को छोड़कर मंदसौर चली गई, और वहाँ उन बुनकरों ने अपना मूल व्यवसाय छोड़कर अन्य व्यवसायों को अपना लिया।

एक असाधारण गतिविधि गुप्तकाल में दिखने को मिली। विशेषतः मध्य प्रदेश में, वह थी स्थानीय किसानों के हित के विरूद्ध ब्राह्मणों की जमींदारी की स्थापना। ब्राह्मण पुरोहितों की दान में जो भूमि दी जाने लगी उससे अवश्य बहुत सी बेकार एवं अनुपयोगी था, परती जमीन आबाद हुई। लेकिन ये हिताधिकारी वर्ग स्थानीय किसानों के मत्थे पर ऊपर से लाद दिये गये, जिसके परिणामस्वरूप, उन किसानों की हैसियत और भी नीचे गिर गई। मध्य और पश्चिम भारत में किसानों से बेगार भी लिया जाने लगा। दूसरी तरफ, मध्य भारत के कबायली इलाकों में ब्राह्मण हिताधिकारियों ने बहुत सारी परती जमीन को आबाद कराया और खेती की अच्छी जानकारी प्रचलित की।[10]

इस समय ब्राह्मणों को बड़े पैमान पर दान के रूप में गाँवों को दिया जाता था जो इस बात का द्योतक है कि ब्राह्मणों की श्रेष्ठता गुप्तकाल में भी रही है। निश्चित तौर पर यहीं से सामंतवादी व्यवस्था की नीव पड़ी या इसका फैलाव शुरू हुआ। राजाओं के गुणगान एवं प्रशंसा की कड़ी में ब्राह्मण गुप्तवंशियों को क्षत्रिय मानने लगे जबकि वे मूलतः वैश्य थे। ब्राह्मणों ने गुप्त राजाओं को देवताओं के गुझों से अंलकृत रूप में चित्रित किया। इससे गुप्त राजाओं की हैसियत धर्मशास्त्र सम्मत हो गई और वे ब्राह्मण प्रधान वर्ण–व्यवस्था के परम प्रतिपालक हो गए। काफी संख्या में मिले ग्राम दानों के फलस्वरूप ब्रह्मणों ने खूब धन संचय किया। इस प्रकार ब्राह्मणों ने बहुत से विशेषाधिकार अर्जित किए जो लगभग पाँचवी सदी ई. में रचित नारद स्मृति में गिनाए गए है।[11]

उस समय वर्ण संरचना अनगिनत जातियों–उपजातियों में बँटे हुए थे। इसके कारण भारी संख्या में विदेशों से आए लोग भारतीय समाज में घुल मिल गए और उन विदेशियों का हर समूह एक–एक खास हिन्दू जाति समझा जाने लगा। चूँकि विदेशी लोग विजेता के रूप में आए इसलिए समाज में उन्हें क्षत्रिय का स्थान मिला। हूण जाति के लोग पाँचवीं सदी का अंत होते–होते आए। अन्ततः राजपूतों के छत्तीस कूलों में से एक कुल के मान लिए गए। आज भी कुछ राजपूत हूण उपाधि धारण किए हुए हैं। जातियों की संख्या बढ़ने का दूसरा कारण था ग्राम दान की प्रक्रिया में बहुत से कबायली लोगों का हिन्दू समाज में समा जाना। कबायली सरदार लोग उच्च कुल के माने जाते थे। किंतु उनके सामान्य रिश्तेदारों को नीच कुल का माना गया, और हर कबीला अपने नए जीवन में एक–न–एक

जाति के रूप में अवतीर्ण हुआ। यह प्रक्रिया आज भी अपने विभिन्न रूपों में विद्यमान है।[12]

इस काल में शूद्रों की स्थिति बहुत हद तक सुधर चुकी थी। अब उन्हें रामायण, महाभारत और पुराण सुनने का अधिकार मिल गया था। वे अब कृष्ण नामक एक नए देवता की पूजा भी कर सकते थे। उन्हें कुछ गृह संस्कारों या घरेलू अनुष्ठानों का भी अधिकार मिला। इन कर्मों में अवश्य ही पुरोहितों को दक्षिणा प्राप्त होती थी। ये सभी शूद्रों की आर्थिक स्थिति में हुए सुधार के ही चमत्कार थे। सातवीं सदी से लेकर उनकी पहचान मुख्यतः कृषक के रूप में होने लगी। जबकि पूर्व काल में उनका दर्शन अपने ऊपर के तीनों वर्णों के वास्ते खटने वाले सेवक, दास और कृषि–मजदूर के रूप में ही होता है।

परन्तु आलोच्य काल में अछूतों की संख्या में वृद्धि हुई, विशेष कर चांडालों की संख्या में। चांडाल समाज में बहुत ही पहले ईसा पूर्व पाँचवी सदी से ही दिखाई देते हैं। ईसा की पाँचवी सदी में आकर उनकी संख्या इतनी बढ़ गई और उनकी अपात्रताएँ इतनी प्रखर हो गई कि उनकी ओर चीनी यात्री फाहियान की दृष्टि बराबर खींच गई[13] जिसने लिखा है कि गाँव के बाहर ही बसते थे और मांस का व्यवसाय करते थे, जब कभी वे नगर में प्रवेश करते, उच्च वर्ण के लोग उनसे दूर ही रहते क्योंकि माना जाता था कि उनके स्पर्श से सड़क अपवित्र हो जाती है।

गुप्तकाल में शूद्रों की भाँति स्त्रियों को भी रामायण, महाभारत और पुराण सुनने का अधिकार प्राप्त हुआ और उनके लिए कृष्ण का पूजन विहित किया गया। लेकिन गुप्त पूर्व काल और गुप्त काल में भी उच्च वर्णों की स्त्रियों में अपना स्वतंत्र जीवन–निर्वाह का जरिया रखना अनुमत नहीं था। निचले दो वर्णों की स्त्रियाँ अपने जीवन–निर्वाह के लिए अर्जन कर सकती थीं, इतने से ही उन्हें बहुत कुछ स्वतंत्रता मिल गई, पर उच्च वर्णों की स्त्रियाँ इस स्वतंत्रता से वंचित थीं। इसमें तर्क यह दिया गया है कि चूँकि वैश्य और शूद्र स्त्रियाँ खेती का काम और घरेलू काम करती हैं इसलिए उन्हें पति की पराधीनता नहीं रहती है।[14] गुप्त काल के विपरीत, इस काल में उच्च वर्णों के लोग अधिक से अधिक पत्नी रखने और अधिक से अधिक सम्पत्ति बटोरने की प्रवृति आई। पितृतंत्रात्मक व्यवस्था में वे पत्नी को निजी सम्पत्ति समझने लगे, यहाँ तक कि पत्नी से मृत्यु में भी साथ देने की आशा करने लगे। पति के मरने पर उसकी पत्नी का पति की चिता में आत्मदाह करने का पहला उदाहरण गुप्तकाल में ही 210 ई. में मिलता है। फिर भी, गुप्तोत्तर काल की कुछ स्मृतियों में कहा गया है कि यदि पति खो जाए, मर जाए, नपुंसक हो जाए, जाति से बहिष्कृत हो जाए तो स्त्री पुनर्विवाह कर सकती है।[15]

संदर्भ ग्रन्थ :

1. भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, डॉ. ए.के. मित्तल, पृ. 413
2. प्राचीन काल का राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, पृ. 91, नालन्दा खुला विश्वविद्यालय।
3. एन.सी.ई.आर.टी, अध्याय–21, पृ. 197
4. वही।
5. वही।
6. वही, अध्याय–21, पृ. 198
7. वही।
8. वही।
9. वही।
10. वही, अध्याय–21, पृ. 199
11. वही।
12. प्राचीन भारत का इतिहास, पृ 290
13. एन.सी.ई.आर.टी, प्राचीन भारत, पृ. 200
14. वही।
15. वही।